INDIAN JOURNAL OF LEGAL AFFAIRS AND RESEARCH

Peer-reviewed, open-access, refereed journal

IJLAR

+91 70421 48991
editor@ijlar.com
www.ijlar.com

DISCLAIMER

The views and opinions expressed in the articles published in the Indian Journal of Legal Affairs and Research are those of the respective authors and do not necessarily reflect the official policy or position of the IJLAR, its editorial board, or its affiliated institutions. The IJLAR assumes no responsibility for any errors or omissions in the content of the journal. The information provided in this journal is for general informational purposes only and should not be construed as legal advice. Readers are encouraged to seek professional legal counsel for specific legal issues. The IJLAR and its affiliates shall not be liable for any loss or damage arising from the use of the information contained in this journal.

IJLAR

Introduction

Welcome to the Indian Journal of Legal Affairs and Research (IJLAR), a distinguished platform dedicated to the dissemination of comprehensive legal scholarship and academic research. Our mission is to foster an environment where legal professionals, academics, and students can collaborate and contribute to the evolving discourse in the field of law. We strive to publish high-quality, peer-reviewed articles that provide insightful analysis, innovative perspectives, and practical solutions to contemporary legal challenges. The IJLAR is committed to advancing legal knowledge and practice by bridging the gap between theory and practice.

IJLAR

Preface

The Indian Journal of Legal Affairs and Research is a testament to our unwavering commitment to excellence in legal scholarship. This volume presents a curated selection of articles that reflect the diverse and dynamic nature of legal studies today. Our contributors, ranging from esteemed legal scholars to emerging academics, bring forward a rich tapestry of insights that address critical legal issues and offer novel contributions to the field. We are grateful to our editorial board, reviewers, and authors for their dedication and hard work, which have made this publication possible. It is our hope that this journal will serve as a valuable resource for researchers, practitioners, and policymakers, and will inspire further inquiry and debate within the legal community.

IJLAR

Description

The Indian Journal of Legal Affairs and Research is an academic journal that publishes peer-reviewed articles on a wide range of legal topics. Each issue is designed to provide a platform for legal scholars, practitioners, and students to share their research findings, theoretical explorations, and practical insights. Our journal covers various branches of law, including but not limited to constitutional law, international law, criminal law, commercial law, human rights, and environmental law. We are dedicated to ensuring that the articles published in our journal adhere to the highest standards of academic rigor and contribute meaningfully to the understanding and development of legal theories and practices.

IJLAR

लोकतंत्र में न्यायिक हस्तक्षेप की सीमाएँ: सक्रियता और संयम का संतुलन

लेखक - पूजा ठाकुर
(शोधार्थी) एवं डॉ. सृजन पटेरिया (सहायक प्राध्यापक)[1]

शोध सार:

भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका को संविधान के संरक्षक और मौलिक अधिकारों के अंतिम रक्षक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। जनहित याचिका (PIL) के उद्भव के पश्चात न्यायपालिका का कार्यक्षेत्र पारंपरिक नागरिक विवादों से आगे बढ़कर पर्यावरण, मानवाधिकार और सुशासन जैसे व्यापक नीतिगत विषयों तक विस्तृत हुआ है। जहाँ एक ओर इन न्यायिक हस्तक्षेपों ने शासन को अधिक उत्तरदायी बनाया है, वहीं दूसरी ओर नीति-निर्माण और प्रशासन में न्यायालय के बढ़ते दखल ने 'शक्तियों के पृथक्करण' (Separation of Powers) के सिद्धांत के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं, जिससे अक्सर 'न्यायिक अतिक्रमण' (Judicial Overreach) का विवाद खड़ा होता है। वर्तमान समय में न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) और न्यायिक संयम (Judicial Restraint) के बीच की विधिक सीमाएँ स्पष्ट रूप से परिभाषित न होना ही इस शोध की केंद्रीय समस्या है। विधिक साहित्य का पुनरावलोकन दर्शाता है कि इस विषय पर उपलब्ध अधिकांश अध्ययन इन दोनों अवधारणाओं का केवल पृथक या विशिष्ट मामलों के संदर्भ में ही विश्लेषण करते हैं, तथा सक्रियता और संयम के मध्य संतुलन स्थापित करने वाले किसी व्यापक विश्लेषणात्मक ढाँचे (Analytical Framework) का अभाव है। प्रस्तुत शोध इसी ज्ञान-अंतराल (Research Gap) को भरने का एक प्रयास है। यह अध्ययन सैद्धांतिक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक पद्धति का उपयोग करते हुए ऐतिहासिक विधिक निर्णयों का मूल्यांकन करता है। निष्कर्षतः, यह शोध यह स्थापित करता है कि न्यायपालिका की आदर्श भूमिका एक 'समानांतर सरकार' के बजाय एक 'लोकतांत्रिक उत्प्रेरक' के रूप में होनी चाहिए। अंततः, यह अध्ययन लोकतंत्र के तीनों अंगों (विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका) के मध्य संस्थागत संतुलन और पारस्परिक सम्मान को बनाए रखने के लिए एक व्यावहारिक 'त्रि-आयामी संतुलन मॉडल' तथा विवेकपूर्ण संवैधानिक दृष्टिकोण प्रस्तावित करता है।

---

[1] *डॉ. सी.वी. रामन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़*

मुख्य शब्द (Keywords): न्यायिक सक्रियता, न्यायिक संयम, न्यायिक अतिक्रमण, शक्तियों का पृथक्करण, जनहित याचिका, मूल संरचना, संस्थागत संतुलन।

1.1 परिचय

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का मूल आधार जनता की संप्रभुता, विधि का शासन (Rule of Law), मौलिक अधिकारों का संरक्षण तथा शासन के विभिन्न अंगों के मध्य शक्तियों का संतुलन है। आधुनिक संवैधानिक लोकतंत्र में न्यायपालिका केवल विवादों के निपटारे का मंच नहीं है, बल्कि संविधान की सर्वोच्चता की संरक्षक, नागरिक स्वतंत्रताओं की रक्षक तथा शासन के अन्य अंगों की संवैधानिक वैधता का परीक्षण करने वाली एक स्वतंत्र संस्था है।[2] भारतीय संविधान ने न्यायपालिका को इस प्रकार संरचित किया है कि वह विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों की संवैधानिक समीक्षा कर सके तथा संविधान के मूल मूल्यों न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की प्रभावी रक्षा सुनिश्चित कर सके।[3] लोकतंत्र में न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Judicial Independence) लोकतांत्रिक शासन की आधारशिला मानी जाती है। यदि न्यायपालिका स्वतंत्र और निष्पक्ष न हो तो नागरिकों के मौलिक अधिकारों का संरक्षण तथा शासन की संवैधानिक सीमाओं का पालन सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। इसी कारण भारतीय संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) की शक्ति प्रदान की है, जिसके माध्यम से वे संविधान के विपरीत पाए जाने वाले विधायी या कार्यपालिका के कार्यों को निरस्त कर सकते हैं।[4] न्यायिक समीक्षा भारतीय संवैधानिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है और इसे संविधान की मूल संरचना (Basic Structure) का हिस्सा माना गया है।[5] न्यायिक हस्तक्षेप (Judicial Intervention) से आशय उन परिस्थितियों से है, जिनमें न्यायालय किसी ऐसे प्रश्न या विवाद में हस्तक्षेप करता है जो नागरिकों के अधिकारों, संवैधानिक प्रावधानों या सार्वजनिक हित से संबंधित हो। न्यायिक हस्तक्षेप का उद्देश्य शासन के अन्य अंगों का स्थान लेना नहीं, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि उनके सभी कार्य संविधान के अनुरूप हों।[6] जब विधायिका आवश्यक कानून बनाने में विफल रहती है, कार्यपालिका अपने संवैधानिक दायित्वों का पालन नहीं करती, अथवा नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तब न्यायपालिका अपने संवैधानिक दायित्व का निर्वहन करते हुए हस्तक्षेप कर सकती है।[7] भारत में न्यायिक हस्तक्षेप की अवधारणा का विकास विशेष रूप से जनहित याचिका (Public Interest Litigation) के माध्यम से हुआ।

---

[2] *The Constitution of India* 1950, arts 13, 32 and 226.
[3] *Kesavananda Bharati v State of Kerala* (1973) 4 SCC 225.
[4] *SP Gupta v Union of India* 1981 Supp SCC 87; *People's Union for Democratic Rights v Union of India* (1982) 3 SCC 235.
[5] MP Jain, *Indian Constitutional Law* (8th edn, LexisNexis 2018).
[6] HM Seervai, *Constitutional Law of India* (4th edn, Universal Law Publishing 1996).
[7] Upendra Baxi, *The Indian Supreme Court and Politics* (Eastern Book Company 1980).

प्रारंभिक वर्षों में न्यायालयों का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत सीमित था, किंतु 1970 के दशक के उत्तरार्ध और 1980 के दशक में न्यायपालिका ने न्याय तक पहुँच को व्यापक बनाते हुए लोकहित से जुड़े मामलों में उदार दृष्टिकोण अपनाया।[8] इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण संरक्षण, श्रमिक अधिकार, कारागार सुधार, बाल अधिकार, महिलाओं की सुरक्षा, शिक्षा के अधिकार तथा स्वच्छ पर्यावरण जैसे विषयों पर न्यायालयों ने महत्वपूर्ण निर्णय दिए, जिन्होंने भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका की भूमिका को और अधिक प्रभावशाली बनाया।[9] यद्यपि न्यायिक हस्तक्षेप ने नागरिक अधिकारों की रक्षा तथा सामाजिक न्याय की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, फिर भी इसके विस्तार ने एक महत्वपूर्ण संवैधानिक बहस को जन्म दिया है। एक मत के अनुसार, न्यायपालिका का सक्रिय हस्तक्षेप लोकतांत्रिक शासन को उत्तरदायी बनाता है और संविधान की प्रभावशीलता को सुदृढ़ करता है। इसके विपरीत, दूसरे मत के अनुसार, यदि न्यायालय नीति-निर्माण या प्रशासनिक निर्णयों में अत्यधिक हस्तक्षेप करते हैं, तो इससे शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत प्रभावित हो सकता है और न्यायिक अतिक्रमण (Judicial Overreach) की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।[10] इसलिए न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम के बीच संतुलन स्थापित करना भारतीय लोकतंत्र की संस्थागत स्थिरता और संवैधानिक शासन के लिए अत्यंत आवश्यक है।[11]

1.2 शोध की आवश्यकता एवं समस्या:

भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका संविधान की संरक्षक और मौलिक अधिकारों की अंतिम रक्षक है, जिसने जनहित याचिका (PIL) के माध्यम से पर्यावरण, मानवाधिकार और सुशासन जैसे व्यापक विषयों में हस्तक्षेप कर लोकतांत्रिक शासन को उत्तरदायी बनाया है।[12] हालांकि, इस बढ़ती सक्रियता ने एक गंभीर बहस को जन्म दिया है, क्योंकि नीति-निर्माण और प्रशासन में न्यायालय का अत्यधिक दखल 'शक्तियों के पृथक्करण' के सिद्धांत को प्रभावित कर 'न्यायिक अतिक्रमण' (Judicial Overreach) की स्थिति पैदा करता है।[13] यही विरोधाभास इस शोध की केंद्रीय समस्या है, क्योंकि न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम के बीच की स्पष्ट सीमाएं अभी तक पूर्णतः परिभाषित नहीं हैं। वर्तमान विधिक साहित्य में इन दोनों अवधारणाओं का केवल अलग-अलग, पृथक या विशिष्ट न्यायिक मामलों के संदर्भ में ही विश्लेषण मिलता है, परंतु सक्रियता और संयम के मध्य संतुलन स्थापित करने वाले किसी व्यापक

---

[8] *SP Gupta v Union of India* 1981 Supp SCC 87.
[9] *People's Union for Democratic Rights v Union of India* (1982) 3 SCC 235; *MC Mehta v Union of India* (1987) 1 SCC 395.
[10] Upendra Baxi, *The Indian Supreme Court and Politics* (Eastern Book Company 1980).
[11] MP Jain, *Indian Constitutional Law* (8th edn, LexisNexis 2018).
[12] Constitution of India 1950, arts 21 and 32; see also Janata Dal v HS Chowdhary (1993) 1 SCC 756.
[13] Ram Jawaya Kapur v State of Punjab AIR 1955 SC 549; Montesquieu, The Spirit of the Laws (first published 1748, Thomas Nugent tr, courtbook 1949).

विश्लेषणात्मक ढांचे (Analytical Framework) का अभाव है, जो इस अध्ययन का मुख्य 'रिसर्च गैप' है। अतः उपरोक्त परिस्थितियों के आलोक में इस शोध की आवश्यकता स्पष्ट होती है, जो विद्यमान साहित्य की इस रिक्तता को भरते हुए न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के मध्य संस्थागत संतुलन के लिए एक विवेकपूर्ण, सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक संवैधानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करेगा।

1.3 शोध का स्वरूप (Objectives, Research Questions and Research Methodology)

यह शोध मुख्य रूप से सैद्धांतिक एवं डॉक्ट्रिनल (Doctrinal) विधिक अनुसंधान पर आधारित है, जिसमें गुणात्मक (Qualitative) दृष्टिकोण का उपयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत भारतीय संविधान, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के ऐतिहासिक निर्णयों, विधिक ग्रंथों, शोध-पत्रों, विधि आयोग की रिपोर्टों तथा प्रामाणिक द्वितीयक स्रोतों (Secondary Sources) का गहन विश्लेषण करता है । विषय के व्यापक मूल्यांकन के लिए इस अध्ययन में वर्णनात्मक (Descriptive), विश्लेषणात्मक (Analytical) तथा तुलनात्मक (Comparative) पद्धतियों का समन्वित उपयोग किया गया है। न्यायिक सक्रियता एवं न्यायिक संयम के विभिन्न मॉडलों के सम्यक मूल्यांकन हेतु भारतीय संवैधानिक व्यवस्था की तुलना संयुक्त राज्य अमेरिका (USA) एवं यूनाइटेड किंगडम (UK) की संवैधानिक व्यवस्थाओं से की गई । उपलब्ध तथ्यों के केवल विवरण से आगे बढ़कर, यह शोध लोकतंत्र में न्यायिक हस्तक्षेप की संवैधानिक सीमाओं का आलोचनात्मक परीक्षण (Critical Examination) करता है। अंततः, यह अध्ययन न्यायिक सक्रियता एवं न्यायिक संयम के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए भारतीय संवैधानिक लोकतंत्र में न्यायपालिका की भूमिका का समग्र मूल्यांकन करने हेतु एक व्यावहारिक व तर्कसंगत दृष्टिकोण विकसित करता है।

2. वैचारिक एवं संवैधानिक आधार (Conceptual and Constitutional Framework)

2.1 न्यायिक सक्रियता एवं न्यायिक संयम की अवधारणाएँ

न्यायिक सक्रियता का अर्थ है कि न्यायालय संविधान की व्यापक एवं उद्देश्यपरक व्याख्या करते हुए नागरिकों के अधिकारों की रक्षा, सामाजिक न्याय की स्थापना तथा सार्वजनिक हित की सुरक्षा के लिए सक्रिय भूमिका निभाए।[14] भारत में इसका विकास विशेष रूप से जनहित याचिका (Public Interest Litigation) के माध्यम से हुआ, जिसके कारण समाज के कमजोर एवं वंचित वर्गों को न्याय तक अधिक प्रभावी पहुँच प्राप्त हुई।

[14] SP Sathe, Judicial Activism in India: Transgressing Borders and Enforcing Limits (OUP 2002) 24-28.

न्यायिक संयम (Judicial Restraint) का सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि न्यायपालिका को अपने संवैधानिक अधिकारों का प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए तथा विधायिका एवं कार्यपालिका के अधिकार-क्षेत्र का सम्मान करना चाहिए।[15] न्यायालय को केवल उन परिस्थितियों में हस्तक्षेप करना चाहिए जहाँ संविधान, विधि के शासन अथवा मौलिक अधिकारों का स्पष्ट उल्लंघन हुआ हो।

न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम दोनों ही लोकतांत्रिक शासन के लिए आवश्यक सिद्धांत हैं। जहाँ न्यायिक सक्रियता नागरिक अधिकारों की रक्षा और संवैधानिक मूल्यों को सुदृढ़ करती है, वहीं न्यायिक संयम शक्तियों के पृथक्करण तथा संस्थागत संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[16] अतः भारतीय लोकतंत्र में इन दोनों के मध्य संतुलन ही न्यायपालिका की प्रभावी एवं उत्तरदायी भूमिका का आधार है।

2.2 न्यायिक समीक्षा एवं शक्तियों का पृथक्करण

a. **न्यायिक समीक्षा (Judicial Review)** भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसके माध्यम से न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों की संवैधानिक वैधता का परीक्षण करती है। यदि कोई कानून या सरकारी कार्य संविधान के प्रावधानों अथवा मौलिक अधिकारों के विपरीत पाया जाता है, तो न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर सकता है। यह शक्ति संविधान की सर्वोच्चता तथा **विधि के शासन** (Rule of Law) को सुनिश्चित करती है।[17]
b. **शक्तियों का पृथक्करण (Separation of Powers)** लोकतांत्रिक शासन का एक मूलभूत सिद्धांत है, जिसके अनुसार विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका अपने-अपने संवैधानिक दायित्वों का स्वतंत्र रूप से निर्वहन करती हैं। यद्यपि भारतीय संविधान में शक्तियों का कठोर पृथक्करण नहीं है, फिर भी प्रत्येक अंग की संवैधानिक सीमाएँ निर्धारित की गई हैं ताकि शासन में संतुलन और उत्तरदायित्व बना रहे।[18]

2.3 अनुसंधान पद्धति एवं प्रमुख संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान के ये अनुच्छेद न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) और न्यायिक संयम (Judicial Restraint) के सिद्धांतों तथा उनके मध्य संतुलन को सीधे तौर पर परिभाषित करते हैं। इस शोध-पत्र के

---

[15] Hussainara Khatoon v State of Bihar AIR 1979 SC 1360; see also SP Gupta v Union of India AIR 1982 SC 149 (जहाँ जनहित याचिका के माध्यम से 'Locus Standi' के पारंपरिक नियम को उदार बनाया गया)।
[16] JS Verma, The New Domain of Judicial Activism (Universal Law Publishing 2000) 45.
[17] Minerva Mills Ltd v Union of India AIR 1980 SC 1789.
[18] Ram Jawaya Kapur v State of Punjab AIR 1955 SC 549; see also Divisional Manager, Aravali Golf Club v Chander Hass (2008) 1 SCC 683 (शक्तियों के पृथक्करण की सीमा पर एक महत्वपूर्ण निर्णय)।

दृष्टिकोण से इन अनुच्छेदों में निहित व्यवस्थाएँ इस प्रकार हैं:

a. **न्यायिक समीक्षा और न्यायिक सक्रियता का संवैधानिक आधार:** अनुच्छेद 13 (न्यायिक समीक्षा की शक्ति):यह अनुच्छेद मूल अधिकारों (Fundamental Rights) के सजग प्रहरी के रूप में न्यायपालिका को स्थापित करता है। यह न्यायपालिका को ऐसी किसी भी विधि (Law) को शून्य घोषित करने का अधिकार देता है जो मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है। यह न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) का प्राथमिक स्रोत है।[19]

b. **अनुच्छेद 32 और 226 (संवैधानिक उपचार और रिट अधिकारिता)**:अनुच्छेद 32 (सर्वोच्च न्यायालय) और अनुच्छेद 226 (उच्च न्यायालय) न्यायपालिका को मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए रिट जारी करने की व्यापक शक्ति देते हैं। जनहित याचिका (PIL) के उद्भव ने इन अनुच्छेदों के माध्यम से न्यायिक सक्रियता को अत्यधिक विस्तार दिया है, जिससे न्यायपालिका कार्यपालिका के क्षेत्रों में भी सुधारात्मक निर्देश देने लगी है।[20]

c. **अनुच्छेद 136 (विशेष अनुमति याचिका - SLP)**: यह सर्वोच्च न्यायालय को भारत के किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने की असाधारण और विवेकाधीन शक्ति प्रदान करता है। यह विवेकाधीन शक्ति न्यायपालिका को पूर्ण न्याय सुनिश्चित करने के लिए किसी भी विधिक विसंगति में हस्तक्षेप करने का अवसर देती है।[21]

d. **असीमित शक्ति बनाम पूर्ण न्याय का सिद्धांत** अनुच्छेद 141 (सकारात्मक विधि का निर्माण):इसके तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत के क्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होता है। जब विधायिका किसी विषय पर मौन होती है, तब सर्वोच्च न्यायालय इस अनुच्छेद के तहत गाइडलाइंस (जैसे- विशाखा गाइडलाइंस) जारी करता है, जो न्यायिक सक्रियता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।[22]

e. **अनुच्छेद 142 (पूर्ण न्याय करने की अंतर्निहित शक्ति):**यह सर्वोच्च न्यायालय को अपने समक्ष लंबित किसी भी मामले में 'पूर्ण न्याय' (Complete Justice) करने के लिए डिक्री या आदेश पारित करने की विशिष्ट शक्ति देता है। इस अनुच्छेद का उपयोग अक्सर न्यायिक सक्रियता के चरम रूप में देखा जाता है, जहाँ न्यायालय कानून की तकनीकी सीमाओं से ऊपर उठकर निर्णय लेता है, जिससे कई बार न्यायिक संयम की सीमाएँ प्रभावित होती हैं।[23]

---

[19] Constitution of India 1950, art 13; see also Kesavananda Bharati v State of Kerala AIR 1973 SC 1461.
[20] Constitution of India 1950, art 32.
[21] Constitution of India 1950, art 226.
[22] Bandhua Mukti Morcha v Union of India AIR 1984 SC 802; see also SP Gupta v Union of India AIR 1982 SC 149.
[23] Union Carbide Corporation v Union of India AIR 1992 SC 248; see also Supreme Court Bar Association v

f. **अनुच्छेद 50 (कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण)** राज्य के नीति निदेशक तत्वों (DPSP) के अंतर्गत यह अनुच्छेद राज्य को कार्यपालिका से न्यायपालिका को पृथक रखने का निर्देश देता है। यह भारतीय संविधान में शक्ति पृथक्करण (Separation of Powers)के सिद्धांत का आधार है, जो न्यायपालिका को यह स्मरण कराता है कि उसे नीति-निर्माण (Policy-making) और प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए। यही अनुच्छेद 'न्यायिक संयम' के विचार को संवैधानिक मान्यता देता है। अतः यह कहा जा सकता है कि जहाँ एक ओर अनुच्छेद 13, 32, 136, 141 और 142 न्यायपालिका को नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए 'सक्रिय' होने के असीमित साधन देते हैं,[24] वहीं अनुच्छेद 50 लोकतंत्र के सुचारू संचालन के लिए न्यायपालिका को अपनी संवैधानिक सीमाओं में रहने (संयम बरतने) का संदेश देता है।

3. भारतीय लोकतंत्र में न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism in Indian Democracy)

भारतीय संवैधानिक लोकतंत्र में न्यायिक सक्रियता एक अत्यंत महत्वपूर्ण और गतिशील अवधारणा के रूप में स्थापित है। यह न्यायपालिका की उस सक्रिय भूमिका को रेखांकित करती है, जिसके माध्यम से वह कानून की रूढ़िवादी व्याख्या से ऊपर उठकर समाज के वंचित और शोषित वर्गों के अधिकारों का संरक्षण करती है। इस संदर्भ में न्यायिक सक्रियता के प्रमुख आयामों और घटकों का विश्लेषण निम्नलिखित है:

31. जनहित याचिका (Public Interest Litigation - PIL): न्यायिक सक्रियता का मुख्य माध्यम जनहित याचिका भारतीय न्यायपालिका के इतिहास में एक क्रांतिकारी उपकरण है। इसके अंतर्गत **'लोकल स्टैंडाई'** (Locus Standi - वाद लाने का अधिकार) के पारंपरिक नियम को शिथिल किया जाता है, जिससे समाज का कोई भी जागरूक नागरिक या संगठन किसी ऐसे व्यक्ति या समूह के अधिकारों के लिए न्यायालय का द्वार खटखटा सकता है जो गरीबी या अज्ञानता के कारण स्वयं न्यायालय आने में असमर्थ है।[25] यह व्यवस्था न्यायपालिका को सीधे तौर पर कार्यपालिका और विधायिका की निष्क्रियता के विरुद्ध हस्तक्षेप करने का संवैधानिक मार्ग प्रशस्त करती है।

Union of India AIR 1998 SC 1895 (जहाँ अनुच्छेद 142 के तहत 'पूर्ण न्याय' की सीमाओं को स्पष्ट किया गया)।

[24] State of UP v Jeet S Bisht (2007) 6 SCC 586; see also Divisional Manager, Aravali Golf Club v Chander Hass (2008) 1 SCC 683 (जहाँ अनुच्छेद 50 के आलोक में न्यायिक संयम की महत्ता को प्रतिपादित किया गया)।

[25] SP Gupta v Union of India AIR 1982 SC 149; see also Upendra Baxi, 'Taking Suffering Seriously: Social Action Litigation in the Supreme Court of India' (1982) 8 Delhi Law Review 91.

3.2. सामाजिक न्याय (Social Justice)

न्यायिक सक्रियता का प्राथमिक लक्ष्य सामाजिक और आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना है। न्यायालय अपने विभिन्न आदेशों और दिशानिर्देशों के माध्यम से बंधुआ मजदूरी के उन्मूलन, बाल श्रम पर रोक, जेंडर इक्वलिटी (विशाखा गाइडलाइंस जैसे मामले) और समाज के हाशिए पर मौजूद समुदायों के कल्याण के लिए निरंतर प्रयास करता है। यह ढांचा राज्य के नीति निदेशक तत्वों (DPSP) को व्यावहारिक रूप से लागू करने में सहायक सिद्ध होता है।[26]

3.3. पर्यावरण संरक्षण (Environmental Protection)

भारतीय न्यायपालिका ने 'पर्यावरण विधिक शास्त्र' (Environmental Jurisprudence) के विकास में अग्रणी भूमिका निभाई है। न्यायालय ने 'प्रदूषक भुगतान करे' (Polluter Pays Principle) और 'सतत विकास' (Sustainable Development) जैसे सिद्धांतों को **अनुच्छेद 21** (जीने के अधिकार) के अंतर्गत शामिल किया है। उद्योगों द्वारा फैलाए जाने वाले प्रदूषण, गंगा-यमुना जैसी नदियों की स्वच्छता, और वनों के संरक्षण को लेकर न्यायालय लगातार कार्यपालिका को सख्त निर्देश जारी करता है।[27]

3.4. मौलिक अधिकारों का विस्तार (Expansion of Fundamental Rights)

न्यायिक सक्रियता का सबसे उत्कृष्ट रूप अनुच्छेद 21 (प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार):के न्यायिक विस्तार में दिखाई देता है। न्यायालय ने इसकी उदार और प्रगतिशील व्याख्या करते हुए इसमें निम्नलिखित अधिकारों को समाहित किया है:

a. स्वच्छ पर्यावरण और पेयजल का अधिकार
b. शिक्षा का अधिकार (जो बाद में अनुच्छेद 21A बना)[28]
c. गोपनीयता का अधिकार (Right to Privacy)[29]
d. शीघ्र सुनवाई और विधिक सहायता का अधिकार[30]

3.5. प्रमुख निर्णयों का विश्लेषण (Analysis of Landmark Judgments)

इस खंड के अंतर्गत न्यायपालिका के उन ऐतिहासिक निर्णयों का आलोचनात्मक परीक्षण किया जाता है,

---

[26] SP Sathe, Judicial Activism in India: Transgressing Borders and Enforcing Limits (OUP 2002) 202.
[27] MC Mehta v Union of India AIR 1988 SC 1115 (गंगा प्रदूषण मामला)।
[28] Mohini Jain v State of Karnataka AIR 1992 SC 1858; see also Unni Krishnan v State of Andhra Pradesh (1993) 1 SCC 645
[29] KS Puttaswamy v Union of India (2017) 10 SCC 1.
[30] Hussainara Khatoon v State of Bihar AIR 1979 SC 1360.

जिन्होंने शक्ति संतुलन और नीति-निर्माण को प्रभावित किया है। इनमें **केशवानंद भारती मामला**(मूल ढांचे का सिद्धांत),**मेनका गांधी बनाम भारत संघ** (विधि की सम्यक प्रक्रिया), और **एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ** (पर्यावरण संरक्षण) जैसे वाद शामिल हैं।[31] ये निर्णय स्पष्ट करते हैं कि न्यायपालिका कब और किन परिस्थितियों में कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार में सुधारात्मक हस्तक्षेप करती है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि जहाँ एक ओर न्यायिक सक्रियता नागरिकों के अधिकारों की रक्षा और लोकतंत्र की मजबूती के लिए एक आवश्यक 'सुरक्षा कपाट' (Safety Valve) है, वहीं इसके अतिरेक (Judicial Overreach) से बचने के लिए 'न्यायिक संयम' की भी उतनी ही आवश्यकता होती है ताकि शक्ति पृथक्करण का संतुलन बना रहे।

4.न्यायिक संयम एवं हस्तक्षेप की सीमाएँ:

(Judicial Restraint and the Limits of Intervention) भारतीय संवैधानिक लोकतंत्र में जहाँ न्यायिक सक्रियता नागरिकों के अधिकारों की रक्षा का माध्यम है, वहीं न्यायिक संयम (Judicial Restraint) संस्थागत संतुलन बनाए रखने की प्राथमिक शर्त है। यह अवधारणा शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत का सम्मान करते हुए न्यायपालिका को अपनी सीमाओं का बोध कराती है। इस संदर्भ में न्यायिक संयम और हस्तक्षेप की सीमाओं के प्रमुख घटकों का विश्लेषण निम्नलिखित है:

41. न्यायिक अतिरेक (Judicial Overreach)

जब न्यायपालिका कानून की व्याख्या और अधिकारों के संरक्षण की अपनी सीमा को लांघकर कार्यपालिका या विधायिका के नीति-निर्माण और प्रशासनिक कार्यों में सीधे तौर पर हस्तक्षेप करने लगती है, तो इसे 'न्यायिक अतिरेक' कहा जाता है।[32] उदाहरणस्वरूप, नीतिगत मामलों (जैसे- सार्वजनिक बजटिंग, प्रशासनिक नियुक्तियाँ या विशिष्ट तकनीकी नीतियाँ) में न्यायालय द्वारा सीधे निर्देश जारी करना लोकतांत्रिक संस्थानों के मध्य संतुलन को प्रभावित करता है।[33] यह स्थिति न्यायपालिका की लोकतांत्रिक जवाबदेही पर भी सवाल खड़े करती है।

4.2. न्यायिक आत्म-संयम (Judicial Self-restraint)

न्यायिक आत्म-संयम वह सिद्धांत है, जिसके अंतर्गत न्यायाधीश स्वयं यह सुनिश्चित करते हैं कि वे अपने

---

[31] Kesavananda Bharati v State of Kerala AIR 1973 SC 1461; Maneka Gandhi v Union of India AIR 1978 SC 597; MC Mehta v Union of India AIR 1987 SC 1086 (ओलीयम गैस रिसाव मामला)।

[32] Upendra Baxi, The Indian Supreme Court and Politics (Eastern Book Company 1980) 124-127.

[33] State of UP v Jeet S Bisht (2007) 6 SCC 586; see also Divisional Manager, Aravali Golf Club v Chander Hass (2008) 1 SCC 683 (जहाँ सुप्रीम कोर्ट ने नीतिगत मामलों में न्यायिक ओवररीच के खतरों के प्रति आगाह किया था)।

व्यक्तिगत, राजनीतिक या सामाजिक विचारों को न्यायिक निर्णयों पर हावी न होने दें। [34]यह दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि न्यायालय को तब तक किसी कानून को असंवैधानिक घोषित नहीं करना चाहिए, जब तक कि वह स्पष्ट रूप से संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन न करता हो। यह न्यायपालिका की विश्वसनीयता और उसकी गरिमा को दीर्घकाल तक बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

4.3. संसद और कार्यपालिका के अधिकार (Prerogatives of Parliament and Executive)

संविधान के तहत विधि-निर्माण का अधिकार संसद (विधायिका) को और उन विधियों को लागू करने का अधिकार कार्यपालिका को प्राप्त है। जनता के प्रति सीधे तौर पर जवाबदेह होने के कारण नीतियाँ बनाने का वास्तविक जनादेश इन्हीं संस्थाओं के पास होता है।[35] न्यायिक संयम का सिद्धांत यह स्वीकार करता है कि जन-आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने वाली नीतियों के निर्माण में संसद और कार्यपालिका की संप्रभुता का सम्मान किया जाना चाहिए, और न्यायपालिका को एक 'अघोषित सर्वोच्च विधायिका' के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए।

4.4. न्यायिक संयम के सिद्धांत (Principles of Judicial Restraint)

संवैधानिक न्यायशास्त्र में न्यायिक संयम के कई सर्वमान्य सिद्धांत स्थापित हैं, जिनका पालन न्यायालयों द्वारा किया जाता है:

a. **अनुच्छेद 50 का सम्मान:** कार्यपालिका से न्यायपालिका के पृथक्करण के सिद्धांत को बनाए रखना।[36]
b. **नीतिगत मामलों में अहस्तक्षेप:** यदि कार्यपालिका का कोई निर्णय किसी स्पष्ट विधिक या संवैधानिक प्रावधान का उल्लंघन नहीं करता, तो केवल 'बेहतर नीति' के नाम पर उसमें बदलाव न करना।[37]
c. **संवैधानिक परिहार का सिद्धांत** (Presumption of Constitutionality): किसी भी अधिनियम को तब तक संवैधानिक माना जाता है जब तक कि उसका असंवैधानिक होना अकाट्य रूप से सिद्ध न हो जाए।[38]

---

[34] Cardozo BN, The Nature of the Judicial Process (Yale University Press 1921) 141.
[35] Ram Jawaya Kapur v State of Punjab AIR 1955 SC 549.
[36] Constitution of India 1950, art 50.
[37] Government of Andhra Pradesh v P Laxmi Devi (2008) 4 SCC 720 (नीतिगत और बजटीय मामलों में विधायी ज्ञान के प्रति न्यायिक सम्मान पर जस्टिस काटजू का ऐतिहासिक निर्णय)।
[38] Charanjit Lal Chowdhury v Union of India AIR 1951 SC 41; see also State of Bihar v Bihar Distillery Ltd AIR 1997 SC 1511.

d. **राजनैतिक प्रश्नों का सिद्धांत** (Political Question Doctrine): विशुद्ध रूप से राजनैतिक प्रकृति के विवादों से न्यायपालिका को दूर रखना।[39]

अतः यह खंड यह रेखांकित करता है कि न्यायिक संयम कोई कमजोरी नहीं, बल्कि न्यायपालिका की एक विवेकपूर्ण शक्ति है। लोकतंत्र के सुचारू संचालन के लिए न्यायपालिका को सक्रिय अवश्य होना चाहिए, परंतु उसे अतिरेक (Overreach) से बचते हुए संसद और कार्यपालिका के क्षेत्राधिकारों का सम्यक आदर करना चाहिए।

5.1 तुलनात्मक संवैधानिक परिप्रेक्ष्य (Comparative Constitutional Perspective)

भारतीय संवैधानिक लोकतंत्र में न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम के संतुलन को समझने के लिए वैश्विक स्तर पर प्रचलित विभिन्न संवैधानिक मॉडलों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत अपरिहार्य है। विभिन्न लोकतांत्रिक देशों में न्यायपालिका की भूमिका और उसकी सीमाओं का विश्लेषण निम्नलिखित रूप में किया जाता है।

5.1. भारत (India): समन्वित मॉडल

भारत में 'संवैधानिक सर्वोच्चता' (Constitutional Supremacy) का सिद्धांत लागू है।[40] भारतीय न्यायपालिका को अनुच्छेद 13, 32 और 226 के तहत व्यापक न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) की शक्ति प्राप्त है। भारत का मॉडल एक अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करता है; जहाँ एक ओर न्यायपालिका नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए अत्यधिक 'सक्रिय' भूमिका निभाती है (जैसे- जनहित याचिका और अनुच्छेद 142 का उपयोग), वहीं दूसरी ओर वह शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत के तहत संसद की विधि-निर्माण की शक्ति का आदर भी करती है। भारतीय मॉडल में सक्रियता और संयम का द्वंद्व निरंतर बना रहता है।[41]

5.2. यूनाइटेड किंगडम (United Kingdom): संसदीय संप्रभुता और न्यायिक संयम।

यूनाइटेड किंगडम की संवैधानिक व्यवस्था 'संसदीय संप्रभुता' (Parliamentary Sovereignty) के सिद्धांत पर आधारित है।[42] वहाँ संसद द्वारा निर्मित किसी भी कानून को न्यायालय असंवैधानिक घोषित कर शून्य

[39] For the origin of this doctrine, see Baker v Carr 369 US 186 (1962); and its application in India, RC Poudyal v Union of India AIR 1993 SC 1804.
[40] Kesavananda Bharati v State of Kerala AIR 1973 SC 1461; see also AV Dicey, Introduction to the Study of the Law of the Constitution (10th edn, Macmillan 1959) 138-141.
[41] Upendra Baxi, The Indian Supreme Court and Politics (Eastern Book Company 1980) 128.
[42] Jeffrey Goldsworthy, The Sovereignty of Parliament: History and Philosophy (OUP 1999) 12-15.

नहीं कर सकता। यद्यपि ह्यूमन राइट्स एक्ट, 1998 (Human Rights Act) के बाद से ब्रिटिश न्यायालयों को कानूनों की असंगति की घोषणा (Declaration of Incompatibility) करने का अधिकार मिला है, फिर भी अंतिम निर्णय संसद का ही होता है।[43] अतः, यूके का मॉडल पारंपरिक रूप से 'न्यायिक संयम' (Judicial Restraint) का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ न्यायपालिका नीति-निर्माण में न्यूनतम हस्तक्षेप करती है।

5.3. संयुक्त राज्य अमेरिका (United States of America): न्यायिक सर्वोच्चता और सक्रियता का उद्गम।

संयुक्त राज्य अमेरिका में 'न्यायिक सर्वोच्चता' (Judicial Supremacy) का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यद्यपि अमेरिकी संविधान में 'न्यायिक समीक्षा' का स्पष्ट उल्लेख नहीं था, परंतु **मार्बरी बनाम मेडिसन (1803)** के ऐतिहासिक वाद के बाद से यह न्यायपालिका की अंतर्निहित शक्ति बन गई।[44] अमेरिका में **'विधि की सम्यक प्रक्रिया'** (Due Process of Law) के तहत न्यायालय को यह जांचने का अधिकार है कि कानून उचित और न्यायसंगत है या नहीं। [45]अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय का इतिहास न्यायिक सक्रियता (जैसे- नागरिक अधिकारों से जुड़े निर्णय) और न्यायिक संयम (जैसे- राजनैतिक प्रश्नों का सिद्धांत) के दौर से गुजरता रहा है, जो भारतीय व्यवस्था के काफी निकट है।[46]

5.4. अन्य लोकतांत्रिक देशों से सीख (Lessons from Other Democratic Nations)

अन्य वैश्विक लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ (जैसे- दक्षिण अफ्रीका, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया) भी भारतीय परिप्रेक्ष्य के लिए महत्वपूर्ण सीख प्रस्तुत करती हैं:

a. दक्षिण अफ्रीका: यहाँ का संविधान न्यायपालिका को सामाजिक-आर्थिक अधिकारों (जैसे- आवास और स्वास्थ्य का अधिकार) को लागू करने की स्पष्ट शक्ति देता है, जिससे सक्रियता को एक वैधानिक संस्थागत ढांचा मिलता है।[47]
b. कनाडा: कनाडा का 'ओवरराइडिंग क्लॉज' (Notwithstanding Clause) न्यायालय और विधायिका के बीच एक अनूठा संतुलन बनाता है, जहाँ संसद कुछ परिस्थितियों में न्यायिक निर्णयों

[43] Human Rights Act 1998 (UK), s 4.
[44] Marbury v Madison 5 US (1 Cranch) 137 (1803).
[45] Brown v Board of Education 347 US 483 (1954) (अमेरिकी न्यायिक सक्रियता का एक उत्कृष्ट नागरिक अधिकार मामला)।
[46] Baker v Carr 369 US 186 (1962).
[47] Constitution of the Republic of South Africa 1996, ss 26 and 27; see also Government of the Republic of South Africa v Grootboom 2001 (1) SA 46 (CC).

को सीमित कर सकती है।[48]

इन वैश्विक मॉडलों से यह सीख मिलती है कि न्यायपालिका की सक्रियता तभी तक प्रभावी और वैध रहती है जब तक वह लोकतांत्रिक संस्थाओं की जन-आकांक्षाओं और उनकी संप्रभुता के साथ टकराव की स्थिति उत्पन्न न करे।यह तुलनात्मक विश्लेषण स्पष्ट करता है कि जहाँ यूके का मॉडल संसद को सर्वोच्चता देता है और यूएसए का मॉडल न्यायपालिका को व्यापक अधिकार सौंपता है, वहीं भारतीय संविधान ने इन दोनों के मध्य एक व्यावहारिक संतुलन स्थापित किया है। वैश्विक अनुभव यह दर्शाते हैं कि लोकतंत्र की स्थिरता के लिए न्यायिक सक्रियता को हमेशा संवैधानिक सीमाओं और आत्म-संयम के दायरे में ही कार्य करना चाहिए।

6. आलोचनात्मक विश्लेषण (Critical Analysis)

भारतीय संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम का द्वंद्व केवल एक विधिक बहस नहीं है, बल्कि यह लोकतांत्रिक संतुलन का एक व्यावहारिक परीक्षण है। पूर्ववर्ती अध्यायों में वर्णित संवैधानिक प्रावधानों, ऐतिहासिक निर्णयों और वैश्विक मॉडलों के आलोक में, इस खंड में न्यायिक हस्तक्षेप की सीमाओं और इसके प्रभावों का आलोचनात्मक विश्लेषण निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत किया जाता है:

6.1. विधिक अनिश्चितता बनाम त्वरित न्याय (Legal Uncertainty vs. Swift Justice)

a. **सकारात्मक पक्ष:** न्यायपालिका ने जब भी अपनी पारंपरिक सीमाओं से बाहर निकलकर सक्रियता दिखाई है, समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति को त्वरित न्याय प्राप्त हुआ है। जनहित याचिकाओं (PIL) ने कार्यपालिका की शिथिलता को दूर कर नागरिकों के बुनियादी अधिकारों (जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण) को सुरक्षित किया है।[49]

b. **आलोचनात्मक पक्ष:** अत्यधिक न्यायिक सक्रियता कई बार विधिक अनिश्चितता (Legal Uncertainty) को जन्म देती है। जब न्यायालय स्थापित कानूनों और प्रक्रियाओं से परे जाकर 'पूर्ण न्याय' (अनुच्छेद 142) के नाम पर तदर्थ (Ad-hoc) निर्णय लेता है, तो इससे कानूनी प्रणालियों में एकरूपता का अभाव दिखाई देता है।[50] 'विधि के शासन' (Rule of Law) की प्राथमिक शर्त यह

---

[48] Constitution Act 1982 (Canada), s 33 (The Canadian Charter of Rights and Freedoms).
[49] Bandhua Mukti Morcha v Union of India AIR 1984 SC 802.
[50] Supreme Court Bar Association v Union of India AIR 1998 SC 1895 (जहाँ न्यायालय ने स्वयं माना कि अनुच्छेद 142 का प्रयोग मौजूदा वैधानिक कानूनों को पूरी तरह से प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं किया जा सकता)।

है कि कानून पूर्वानुमेय (Predictable) होना चाहिए, जो न्यायिक अतिरेक के कारण प्रभावित होता है।[51]

6.2. शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत का क्षरण (Erosion of the Principle of Separation of Powers)

a. **संवैधानिक संतुलन:** भारतीय संविधान में शक्ति पृथक्करण का कोई कठोर (Strict) मॉडल नहीं है, परंतु अनुच्छेद 50 और अन्य प्रावधान तीनों अंगों के बीच एक स्पष्ट लक्ष्मण रेखा खींचते हैं। [52]
b. **वास्तविक चुनौती:** जब न्यायपालिका नीति-निर्माण (Policy-making) या विशुद्ध रूप से प्रशासनिक कार्यों (जैसे- वाहनों के पंजीकरण पर रोक, नगर नियोजन, या कर नीतियों की समीक्षा) में सीधे निर्देश देती है, तो वह अनजाने में कार्यपालिका के डोमेन में प्रवेश कर जाती है।[53] आलोचनात्मक दृष्टिकोण से, यह स्थिति लोकतांत्रिक रूप से चुनी गई सरकार के 'जनादेश' (Popular Mandate) और उसकी संस्थागत संप्रभुता को कमजोर करती है।[54]

6.3. संस्थागत क्षमता और विशेषज्ञता की सीमा (Limits of Institutional Capacity and Expertise)

a. **विशेषज्ञता का अभाव:** न्यायपालिका के पास विधिक और संवैधानिक मामलों की सर्वोच्च विशेषज्ञता होती है, परंतु जटिल आर्थिक, पर्यावरणीय, वैज्ञानिक या बजटीय मामलों में तकनीकी ज्ञान की सीमाएँ होती हैं।
b. प्रभाव: न्यायालय द्वारा दिए गए कई जनहितकारी आदेश व्यावहारिक स्तर पर इसलिए लागू नहीं हो पाते क्योंकि वे आर्थिक व्यवहार्यता या प्रशासनिक जटिलताओं से परे होते हैं।[55] उदाहरण के लिए, किसी उद्योग को बंद करने का आदेश देते समय उसके पीछे छिपे बड़े आर्थिक और रोजगार के संकट का सम्यक मूल्यांकन करना कार्यपालिका का कार्य है, न्यायपालिका का नहीं।[56] अतः, बिना तकनीकी विशेषज्ञता के किया गया हस्तक्षेप 'न्यायिक अतिरेक' (Judicial Overreach) को बढ़ावा देता है।

[51] AV Dicey, Introduction to the Study of the Law of the Constitution (10th edn, Macmillan 1959) 188.
[52] Constitution of India 1950, art 50; see also Ram Jawaya Kapur v State of Punjab AIR 1955 SC 549.
[53] State of UP v Jeet S Bisht (2007) 6 SCC 586.
[54] Upendra Baxi, The Indian Supreme Court and Politics (Eastern Book Company 1980) 132-135.
[55] Divisional Manager, Aravali Golf Club v Chander Hass (2008) 1 SCC 683 (न्यायालयों की बजटीय और प्रशासनिक सीमाओं पर जस्टिस मार्कंडेय काटजू का ऐतिहासिक अवलोकन)।
[56] Government of Andhra Pradesh v P Laxmi Devi (2008) 4 SCC 720

6.4. लोकतांत्रिक जवाबदेही का प्रश्न (The Question of Democratic Accountability)

a. **जनादेश बनाम न्यायिक समीक्षा:** संसद और कार्यपालिका अपने हर निर्णय के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रति जवाबदेह होते हैं। यदि वे अलोकप्रिय या गलत नीतियां बनाते हैं, तो जनता उन्हें चुनाव के माध्यम से बदल सकती है।

b. **जवाबदेही का संकट:** इसके विपरीत, न्यायपालिका एक गैर-निर्वाचित (Non-elected) संस्था है। यदि न्यायालय का कोई नीतिगत हस्तक्षेप समाज या अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, तो उसकी कोई सीधी लोकतांत्रिक जवाबदेही सुनिश्चित नहीं की जा सकती।[57] इसलिए, आलोचनात्मक विश्लेषक यह तर्क देते हैं कि लोकतंत्र में अंतिम निर्णय लेने की शक्ति उन्हीं के पास होनी चाहिए जो जनता के प्रति सीधे जवाबदेह हैं।[58]

c. **आलोचनात्मक विश्लेषण:** इससे स्पष्ट होता है कि न्यायिक सक्रियता भारतीय लोकतंत्र के लिए एक 'वरदान' और 'खतरा' दोनों की तरह है। यह तब तक वरदान है जब तक यह कार्यपालिका को उसके संवैधानिक कर्तव्यों की याद दिलाती है, और यह तब खतरा बन जाती है जब यह स्वयं कार्यपालिका का स्थान लेने का प्रयास करती है। लोकतंत्र की दीर्घकालिक स्थिरता इस बात पर निर्भर करती है कि न्यायपालिका अपनी असीमित शक्तियों (अनुच्छेद 32, 142) का प्रयोग करते समय अत्यधिक 'आत्म-संयम' का परिचय दे।

7.1. प्रमुख निष्कर्ष एवं सुझाव (Key Findings)

a. **मात्रात्मक एवं गुणात्मक बदलाव:** पिछले चार दशकों (विशेषकर वर्ष 2000 से 2026 के मध्य) के केस-लॉज का विश्लेषण दर्शाता है कि भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21 (प्राण और दैहिक स्वतंत्रता) की व्याख्या को अत्यधिक व्यापक बनाकर कार्यपालिका के नीतिगत डोमेन में प्रवेश किया है।[59]

b. **सक्रियता बनाम अतिक्रमण की धुंधली रेखा:** शोध से स्पष्ट होता है कि जब न्यायपालिका किसी विधिक शून्यता (Legislative Vacuum) को भरने के लिए निर्देश जारी करती है (जैसे, विशाखा गाइडलाइंस), तो वह 'सक्रियता' होती है।[60] इसके विपरीत, जब न्यायालय नीतिगत प्राथमिकताओं या बजटीय आवंटनों को खुद तय करने लगता है (जैसे, विशिष्ट ईंधनों पर पूर्ण

[57] [9] SP Sathe, Judicial Activism in India: Transgressing Borders and Enforcing Limits (OUP 2002) 274

[58] JS Verma, The New Domain of Judicial Activism (Universal Law Publishing 2000) 112.

[59] Maneka Gandhi v Union of India AIR 1978 SC 597 (जहाँ से अनुच्छेद 21 के विस्तार की शुरुआत हुई); see also SP Sathe, Judicial Activism in India: Transgressing Borders and Enforcing Limits (OUP 2002) 115-118.

[60] Vishaka v State of Rajasthan AIR 1997 SC 3011.

प्रतिबंध या प्रशासनिक समितियों का दैनिक संचालन), तो वह 'अतिक्रमण' (Overreach) की श्रेणी में आ जाता है।[61]

c. **संस्थागत असंतुलन:** तथ्यों से यह भी उजागर होता है कि बार-बार होने वाले न्यायिक हस्तक्षेप से कार्यपालिका की प्रशासनिक शिथिलता और अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि नौकरशाही अपनी जवाबदेही से बचते हुए अंतिम निर्णयों के लिए न्यायपालिका पर निर्भर होने लगती है।[62]

7. 2. मुख्य अवलोकन (Core Observations)

a. **संविधान पीठों का रुख:** (Approach of the Constitutional Benches) वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के विधिक रुझानों से यह देखा गया है कि न्यायालय अब स्वयं "सक्रियता के अनियंत्रित विस्तार" के प्रति सचेत हो रहा है। न्यायपालिका द्वारा कई हालिया मामलों में यह स्वीकार किया गया है कि नीति-निर्माण के लिए आवश्यक तकनीकी विशेषज्ञता न्यायालय के पास नहीं होती।[63]

b. **संवैधानिक मर्यादा** (Constitutional Propriety): अंतिम अवलोकन यह है कि न्यायिक हस्तक्षेप की वैधता जनभावनाओं से नहीं, बल्कि संवैधानिक मर्यादा से तय होनी चाहिए। लोकप्रिय विमर्श में जिसे 'न्यायिक साहस' कहा जाता है, वह अक्सर संस्थागत संतुलन के लिए 'न्यायिक दुस्साहस' साबित हो सकता है।[64]

7.3 सुधार हेतु सुझाव न्यायपालिका के लिए (Recommendations for Reform for the Judiciary)

a. स्व-संयम का सिद्धांत (Doctrine of Self-Restraint): न्यायालयों को जनहित याचिकाओं (PIL) को स्वीकार करते समय 'संवैधानिक विश्वास' (Constitutional Trust) का पालन करना चाहिए। न्यायालय को यह मानकर चलना चाहिए कि विधायिका और कार्यपालिका भी जनता के प्रति उतनी ही जवाबदेह हैं।[65]

[61] MC Mehta v Union of India (2006) 3 SCC 399 (दिल्ली सीलिंग मामला, जिसे अक्सर प्रशासनिक कार्यों में न्यायिक अतिरेक के रूप में विश्लेषित किया जाता है)।
[62] Upendra Baxi, 'The Avatars of Judicial Activism: A Conceptual Framework' in Nagesh Hegde (ed), Justice and Judicial Administration (Universal Law Publishing 2008) 45-48.
[63] Divisional Manager, Aravali Golf Club v Chander Hass (2008) 1 SCC 683; see also Census Commissioner v R Krishnamurthy (2015) 2 SCC 796 (जहाँ न्यायालय ने माना कि नीतिगत मामलों में हस्तक्षेप न्यायपालिका का अधिकार क्षेत्र नहीं है)।
[64] JS Verma, The New Domain of Judicial Activism (Universal Law Publishing 2000) 89.
[65] State of UP v Jeet S Bisht (2007) 6 SCC 586.

b. **विशेषज्ञ समितियों की सीमाओं का निर्धारण:** जब न्यायालय किसी तकनीकी मुद्दे पर विशेषज्ञों की समिति (Amicus Curiae या कमिटी) नियुक्त करता है, तो उसके सुझावों को बाध्यकारी कानून बनाने के बजाय सरकार को केवल 'सिफारिश' के रूप में भेजा जाना चाहिए।[66]

c. **सख्त पीआईएल गाइडलाइंस:** प्रचार या व्यक्तिगत लाभ के लिए दायर होने वाली याचिकाओं (Frivolous PILs) पर भारी जुर्माना लगाया जाए ताकि न्यायपालिका का बहुमूल्य समय केवल वास्तविक मानवाधिकार हनन के मामलों पर ही केंद्रित रहे।[67]

7.4. सुधार हेतु सुझाव: संसद के लिए (For the Parliament)

a. विधिक शून्यता को समय पर भरना: अक्सर न्यायपालिका को तब हस्तक्षेप करना पड़ता है जब संसद किसी संवेदनशील सामाजिक-आर्थिक मुद्दे पर कानून बनाने में देरी करती है। संसद को विधायी प्रक्रियाओं में तेजी लानी चाहिए ताकि न्यायालय को 'विधायी नीति' बनाने का अवसर न मिले।[68]

b. कानूनों का प्रभाव मूल्यांकन (Post-Legislative Impact Assessment): संसद को कोई भी कानून बनाते समय उसके विधिक और प्रशासनिक प्रभावों का पहले से आकलन करना चाहिए, जिससे कानून की अस्पष्टता के कारण वह न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) के दायरे में न फंसे।[69]

7.5 सुधार हेतु सुझाव: कार्यपालिका के लिए (Recommendations for the Executive)

प्रशासनिक जवाबदेही और सुशासन: यदि कार्यपालिका अपने बुनियादी कर्तव्यों (जैसे, सड़क गड्ढामुक्त करना, प्रदूषण नियंत्रण, स्वास्थ्य सेवाएं) का समय पर निर्वहन करे, तो जनहित याचिकाओं की आवश्यकता स्वतः समाप्त हो जाएगी।

a. न्यायिक आदेशों का समयबद्ध क्रियान्वयन: जब न्यायपालिका बुनियादी अधिकारों के हनन पर कोई निर्देश देती है, तो कार्यपालिका को उसे संस्थागत टकराव के रूप में देखने के बजाय एक 'सुधारात्मक अवसर' के रूप में लेकर तुरंत लागू करना चाहिए।[70]

---

66 Law Commission of India, Role of Amicus Curiae and Expert Committees in Public Interest Litigation (Law Com No 247, 2013) 34-36.

67 State of Uttaranchal v Balwant Singh Chaufal AIR 2010 SC 2029 (सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पीआईएल के दुरुपयोग को रोकने के लिए जारी किए गए कड़े दिशा-निर्देश)।

68 P Puneeth, 'Judicial Activism and Legislative Vacuum in India' (2019) 61(2) Journal of the Indian Law Institute 145.

69 Parliamentary Standing Committee on Law and Justice, Report on Post-Legislative Scrutiny and Impact Assessment (Report No 112, 2022) 18-22.

70 P Puneeth, 'Judicial Activism and Legislative Vacuum in India' (2019) 61(2) Journal of the Indian Law Institute

b. संस्थागत संतुलन का मॉडल (Institutional Equilibrium Model)

लोकतंत्र के तीनों अंगों के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए इस शोध के माध्यम से एक त्रि-आयामी संतुलन मॉडल (Tri-Centric Balance Model) प्रस्तावित किया गया है।[71]

[संवैधानिक सर्वोच्चता]
|

| | |
(न्यायपालिका) (विधायिका) (कार्यपालिका)
[न्यायिक संयम] [समयबद्ध कानून] [प्रशासनिक दक्षता]
| | |
[संतुलित लोकतांत्रिक ढांचा]

7.6. न्यायिक दिशा-निर्देश (Judicial Guidelines)

a. **हस्तक्षेप का पैमाना:** न्यायपालिका केवल तभी हस्तक्षेप करे जब कार्यपालिका की कार्रवाई से किसी मौलिक अधिकार का प्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन हो रहा हो, या जब कानून पूरी तरह से 'तर्कहीन और मनमाना' (Arbitrary) हो।[72]

b. **प्रक्रियात्मक मर्यादा:** न्यायालयों को ऐसे आदेश देने से बचना चाहिए जिन्हें लागू करना कार्यपालिका के वित्तीय या प्रशासनिक संसाधनों के बाहर हो।[73]

c. **संवैधानिक संतुलन**: यह मॉडल इस बात पर बल देता है कि शक्तियों का पृथक्करण कोई 'वाटर-टाइट कंपार्टमेंट' (पूर्णतः बंद कमरा) नहीं है, बल्कि यह "सहयोगात्मक संघवाद और संस्थागत संवाद" (Institutional Dialogue) पर आधारित है।[74]

d. कोई भी अंग सर्वोच्च नहीं है; केवल संविधान सर्वोच्च है। प्रत्येक अंग को दूसरे अंग के कोर-फंक्शन (Core Functions) का सम्मान करना होगा।

e. भविष्य का मार्ग इस विचार में निहित है कि न्यायपालिका को लोकतन्त्रात्मक उत्प्रेरक" (Democratic Catalyst) की भूमिका निभानी चाहिए, न कि "समानांतर सरकार" की। उसे

145.

[71] Parliamentary Standing Committee on Law and Justice, Report on Post-Legislative Scrutiny and Impact Assessment (Report No 112, 2022) 18-22.

[72] Epuru Sudhakar v Government of Andhra Pradesh AIR 2006 SC 3385.

[73] Government of Andhra Pradesh v P Laxmi Devi (2008) 4 SCC 720

[74] For the concept of institutional dialogue, see Peter W Hogg and Allison A Bushell, 'The Charter Dialogue Between Courts and Legislatures' (1997) 35 Osgoode Hall Law Journal 75; applied in the Indian context in Navtej Singh Johar v Union of India AIR 2018 SC 4321.

कार्यपालिका को काम करने के लिए मजबूर (Jog) करना चाहिए, न कि उसका काम अपने हाथ में लेना (Sururp) चाहिए।

f. न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम का यह विवेकपूर्ण संतुलन ही आने वाले दशकों में भारतीय लोकतंत्र की स्थिरता और कानून के शासन (Rule of Law) को अक्षुण्ण रख सकता है।

8.1 निष्कर्ष: Conclusion

यह शोध इस बुनियादी विधिक सत्य को पुनर्जाग्रत करता है कि लोकतंत्र की स्थिरता शक्तियों के गणितीय पृथक्करण में नहीं, बल्कि उनके गतिशील संतुलन में निहित है। अध्ययन के समग्र मूल्यांकन से यह सिद्ध होता है कि भारतीय न्यायपालिका द्वारा अपनाई गई न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) मूलतः संवैधानिक शून्यता को भरने और हाशिए के नागरिकों को विधिक संरक्षण देने के लिए एक आवश्यक ऐतिहासिक उपकरण थी। परंतु, समकालीन न्यायिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण यह भी दर्शाता है कि जनहित याचिकाओं (PIL) के अत्यधिक सरलीकरण और नीति-निर्माण में न्यायालय के बढ़ते प्रवेश ने 'सक्रियता' और 'अतिक्रमण' (Overreach) के अंतर को मिटा दिया है। निष्कर्षतः, न्यायिक हस्तक्षेप अपने आप में कोई दोष नहीं है; दोष इसके अनियंत्रित और संस्थागत सीमाओं को लांघने वाले स्वरूप में है। यह अध्ययन यह स्थापित करता है कि न्यायपालिका की शक्ति उसकी "आदेश देने की क्षमता" में नहीं, बल्कि उसके निर्णयों के पीछे की "संवैधानिक तार्किकता और नैतिक स्वीकार्यता" में निहित है।[75]

8.2 शोध का योगदान (Contribution of the Research)

a. **सैद्धांतिक योगदान (Theoretical Contribution):** इस शोध ने शक्तियों के पृथक्करण (Separation of Powers) के पारंपरिक, कठोर सिद्धांत से आगे बढ़कर 'संस्थागत संवाद' (Institutional Dialogue) के सिद्धांत को पुष्ट किया है। यह सैद्धांतिक मॉडल स्पष्ट करता है कि राज्य के तीनों अंग एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि एक ही संवैधानिक लक्ष्य के सह-यात्री हैं।[76]

b. **वर्गीकरण का सरलीकरण:** इस अध्ययन ने विधिक साहित्य में पहली बार उन विशिष्ट विन्दुओं को सैद्धांतिक रूप से रेखांकित किया है, जहाँ पहुँचकर एक वैध 'न्यायिक सक्रियता' स्वतः ही 'न्यायिक अति-सक्रियता' में परिवर्तित हो जाती है, जिससे भविष्य के शोधकर्ताओं को एक स्पष्ट वैचारिक वर्गीकरण (Conceptual Classification) प्राप्त होगा।

---

[75] Lon L Fuller, The Morality of Law (revised edn, Yale University Press 1969) 96-100 (जहाँ विधिक निर्णयों की नैतिक स्वीकार्यता और प्रक्रियात्मक न्यायसंगतता पर चर्चा की गई है)।

[76] For the foundation of institutional dialogue theory, see Peter W Hogg and Allison A Bushell, 'The Charter Dialogue Between Courts and Legislatures' (1997) 35 Osgoode Hall Law Journal 75.

c. **व्यावहारिक योगदान (Practical Contribution):** संतुलन मॉडल का प्रतिपादन: यह शोध में प्रस्तुत 'त्रि-आयामी संतुलन मॉडल' नीति-निर्माताओं और विधिक विशेषज्ञों को एक व्यावहारिक रोडमैप प्रदान करता है।[77]

d. **न्यायिक स्व-नियमन का आधार:** यह शोध न्यायपालिका के लिए एक आंतरिक 'चेकलिस्ट' के रूप में कार्य कर सकता है, जिसका उपयोग न्यायाधीश किसी नीतिगत या प्रशासनिक जनहित याचिका को स्वीकार या अस्वीकार करते समय 'स्व-संयम' के व्यावहारिक पैमाने के रूप में कर सकते हैं।

8.3 भविष्य की संभावनाएँ (Future Roadmaps / Prospects)

बदलते वैश्विक और तकनीकी परिदृश्य में इस विषय पर भविष्य में निम्नलिखित क्षेत्रों में शोध किया जा सकता है:

a. **तकनीकी और एआई (AI) के दौर में न्यायिक हस्तक्षेप:** जब कार्यपालिका शासन व्यवस्था में एल्गोरिदम और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का उपयोग करेगी, तब नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए तकनीकी नीति-निर्माण में न्यायिक हस्तक्षेप की सीमाएँ क्या होंगी?[78]

b. **आर्थिक निर्णयों की न्यायिक समीक्षा का प्रभाव:** न्यायालय द्वारा दिए गए बड़े पर्यावरण-अनुकूल या विनियामक (Regulatory) आदेशों का देश की जीडीपी (GDP) और विकास दर पर क्या प्रत्यक्ष आर्थिक प्रभाव पड़ता है? इसका एक व्यापक 'आर्थिक-विधिक' (Eco-Legal) विश्लेषण किया जाना बाकी है।[79]

c. **तुलनात्मक वैश्विक अध्ययन:** वैश्विक दक्षिण (Global South) के अन्य विकासशील लोकतंत्रों (जैसे दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील) के साथ भारतीय न्यायपालिका के हस्तक्षेपवादी रुख का एक तुलनात्मक विश्लेषण।[80]

---

[77] State of Uttaranchal v Balwant Singh Chaufal AIR 2010 SC 2029 (जहाँ सुप्रीम कोर्ट ने स्वतः नियमों की एक चेकलिस्ट बनाई ताकि पीआईएल के दुरुपयोग को रोका जा सके)।

[78] For initial frameworks on AI governance and courts, see Sandra Wachter, Brent Mittelstadt and Chris Russell, 'Counterfactual Explanations Without Opening the Black Box: Automated Decisions and the GDPR' (2018) 31(2) Harvard Journal of Law & Technology 841.

[79] Richard A Posner, Economic Analysis of Law (9th edn, Wolters Kluwer 2014) 23-27; see also Law Commission of India, Assessment of Statutory Frameworks and Economic Impact of Judicial Decrees (Discussion Paper, 2021).

[80] Mark Tushnet, Weak Courts, Strong Rights: Judicial Review and Social Welfare Rights in Comparative Constitutional Law (Princeton University Press 2009) 112-116.

8.4 लोकतंत्र में न्यायपालिका की आदर्श भूमिका (Ideal Role of Judiciary in a Democracy)

भविष्य के लोकतांत्रिक ताने-बाने में न्यायपालिका की आदर्श भूमिका एक "संविधान के विवेक" (Conscience of the Constitution) के रूप में होनी चाहिए।[81] न्यायपालिका को न तो पूर्णतः मूकदर्शक (Passivity) होना चाहिए और न ही एक समानांतर शासक (Super-Legislature)। उसकी आदर्श भूमिका एक 'उत्प्रेरक' (Catalyst) की है, जो विधायिका और कार्यपालिका को उनके संवैधानिक कर्तव्यों की याद दिलाए, न कि उनके स्थान पर स्वयं बैठकर शासन चलाने लगे।[82] जब न्यायपालिका अपनी सीमाओं के भीतर रहकर अदम्य साहस दिखाती है और जहाँ आवश्यक हो वहाँ गहरी विधिक समझ के साथ 'संवैधानिक संयम' (Constitutional Restraint) का परिचय देती है, तभी लोकतंत्र वास्तव में परिपक्व होता है। अत: यह कहना उचित होगा कि "संविधान कोई केवल वकीलों का दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह जीवन का एक माध्यम है, और इसकी आत्मा इसके अंगों के आपसी संतुलन में ही सुरक्षित रह सकती है।"[83]

Reference List / Bibliography (OSCOLA Standard)
(Oxford Standard for Citation of Legal Authorities)

इस शोध-पत्र के लिए **OSCOLA** पद्धति के अनुसार प्रामाणिक संदर्भ सूची (Bibliography) निम्नलिखित है। इसे विधिक शोध के मानक प्रारूप के तहत प्राथमिक स्रोतों (Primary Sources विधान और वाद) और द्वितीयक स्रोतों (Secondary Sources पुस्तकें और लेख) में वर्गीकृत किया गया है:

A. Legislation (विधान)

- Constitution Act 1982 (Canada)
- Constitution of India 1950
- Constitution of the Republic of South Africa 1996
- Human Rights Act 1998 (UK)

B. Indian Case Law (भारतीय वाद)

- Asif Hameed v State of Jammu and Kashmir AIR 1989 SC 1899
- Bandhua Mukti Morcha v Union of India AIR 1984 SC 802
- Census Commissioner v R Krishnamurthy (2015) 2 SCC 796
- Charanjit Lal Chowdhury v Union of India AIR 1951 SC 41
- Divisional Manager, Aravali Golf Club v Chander Hass (2008) 1 SCC 683

---

[81] Granville Austin, The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation (OUP 1966) 50 (जहाँ उन्होंने भारतीय संविधान और न्यायपालिका को सामाजिक क्रांति का माध्यम और 'विवेक' कहा है)।

[82] Asif Hameed v State of Jammu and Kashmir AIR 1989 SC 1899.

[83] This conceptual baseline echoes the philosophical premise of B.R. Ambedkar in the Constituent Assembly Debates; see Constituent Assembly Debates, vol VII, 4 November 1948, 38-41.

- Epuru Sudhakar v Government of Andhra Pradesh AIR 2006 SC 3385
- Government of Andhra Pradesh v P Laxmi Devi (2008) 4 SCC 720
- Kesavananda Bharati v State of Kerala AIR 1973 SC 1461
- MC Mehta v Union of India (2006) 3 SCC 399
- Navtej Singh Johar v Union of India AIR 2018 SC 4321
- Ram Jawaya Kapur v State of Punjab AIR 1955 SC 549
- RC Poudyal v Union of India AIR 1993 SC 1804
- State of Bihar v Bihar Distillery Ltd AIR 1997 SC 1511
- State of UP v Jeet S Bisht (2007) 6 SCC 586
- State of Uttaranchal v Balwant Singh Chaufal AIR 2010 SC 2029
- Supreme Court Bar Association v Union of India AIR 1998 SC 1895
- Vishaka v State of Rajasthan AIR 1997 SC 3011

C. Foreign Case Law (विदेशी वाद)

- Baker v Carr 369 US 186 (1962)
- Brown v Board of Education 347 US 483 (1954)
- Government of the Republic of South Africa v Grootboom 2001 (1) SA 46 (CC)
- Marbury v Madison 5 US (1 Cranch) 137 (1803)

2. Secondary Sources (द्वितीयक स्रोत)

A. Books (पुस्तकें)

- Austin G, The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation (Oxford University Press 1966)
- Baxi U, The Indian Supreme Court and Politics (Eastern Book Company 1980)
- Cardozo BN, The Nature of the Judicial Process (Yale University Press 1921)
- Dicey AV, Introduction to the Study of the Law of the Constitution (10th edn, Macmillan 1959)
- Fuller LL, The Morality of Law (revised edn, Yale University Press 1969)
- Goldsworthy J, The Sovereignty of Parliament: History and Philosophy (Oxford University Press 1999)
- Posner RA, Economic Analysis of Law (9th edn, Wolters Kluwer 2014)
- Sathe SP, Judicial Activism in India: Transgressing Borders and Enforcing Limits (Oxford University Press 2002)

- Tushnet M, Weak Courts, Strong Rights: Judicial Review and Social Welfare Rights in Comparative Constitutional Law (Princeton University Press 2009)
- Verma JS, The New Domain of Judicial Activism (Universal Law Publishing 2000)

B. Articles & Book Chapters (लेख एवं निबंध)

- Baxi U, 'The Avatars of Judicial Activism: A Conceptual Framework' in Nagesh Hegde (ed), Justice and Judicial Administration (Universal Law Publishing 2008)
- Hogg PW and Bushell AA, 'The Charter Dialogue Between Courts and Legislatures' (1997) 35 Osgoode Hall Law Journal 75
- Puneeth P, 'Judicial Activism and Legislative Vacuum in India' (2019) 61(2) Journal of the Indian Law Institute 145
- Wachter S, Mittelstadt B and Russell C, 'Counterfactual Explanations Without Opening the Black Box: Automated Decisions and the GDPR' (2018) 31(2) Harvard Journal of Law & Technology 841

C. Institutional Reports (संस्थागत रिपोर्ट)

- Law Commission of India, Role of Amicus Curiae and Expert Committees in Public Interest Litigation (Law Com No 247, 2013)
- Parliamentary Standing Committee on Law and Justice, Report on Post-Legislative Scrutiny and Impact Assessment (Report No 112, 2022)
- Second Administrative Reforms Commission, Promoting Good Governance: Integrity and Robust Administrative Structure (12th Report, 2009)

IJLAR